लेख

1

प्राथमिक स्तर पर कला शिक्षा कलात्मकता के विकास के विक्टर लॉन्फेल्ड के सिद्धांत की उपादेयता

अखिलेश कुमार*
रजनी रंजन सिंह**

भारत का कलात्मक इतिहास अत्यंत समृद्ध है परंतु स्वातंत्र्योत्तर भारत में अंग्रेज़ों द्वारा विकसित मैकाले की शिक्षा व्यवस्था सतत रहने के कारण शिक्षा का सरोकार मानवीय मूल्य एवं नैतिकता से दूर होता गया। शिक्षा 'भौतिकवादी' और 'बाज़ारवादी' होती गयी और जिसने मानवीय मूल्यों पर आधारित प्राचीन भारतीय समाज की सामाजिक व्यवस्था पर कुठाराघात किया, जिसका परिणाम विभिन्न सामाजिक विकृतियों के रूप में सामने आ रहा है। मूल्यों का क्षरण वैश्विक स्तर पर शिक्षाविदों की चिंता का विषय है। अपना अस्तित्व बनाए रखने के लिए जीवन में स्वतंत्रता एवं आनंद का महत्वपूर्ण स्थान है जो हमें विभिन्न कलाओं के माध्यम से सहज प्राप्य हो सकते हैं। अतः शिक्षा के इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु कला शिक्षा एक प्रमुख साधन हो सकती है। कलात्मक विकास की अवस्था का विक्टर लॉन्फेल्ड का सिद्धांत बच्चों में कलात्मकता के विकास का एक व्यापक विश्लेषण प्रस्तुत करता है। इस लेख का उद्देश्य इक्कीसवीं सदी में कला शिक्षा के संदर्भ में बच्चों की कलात्मकता एवं कलात्मकता के विकास को समझने हेतु लॉन्फेल्ड के सिद्धांत की एक आलोचनात्मक व्याख्या प्रस्तुत करना है।

"संस्कृतियों का मूल्यांकन उनकी कला द्वारा होता है। अधिकांश संस्कृतियों एवं ऐतिहासिक युगों ने बच्चों की शिक्षा में कला के महत्व को अस्वीकार नहीं किया है। कला अधिगम, ज्ञान एवं अभिव्यक्ति का एक समयानुकूल माध्यम है।"

—लुइस हेटलैंड

भारत का कलात्मक इतिहास अत्यंत समृद्ध है। चाहे वह चित्रकला हो या नृत्य कला हो या फिर संगीत कला हो। भारत में कला का इतिहास उतना ही पुराना है जितना भारतीय समाज। समय से ही विभिन्न पुरातन कलाओं एवं कलाकारों को एक महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त था एवं विभिन्न गुरुकुलों में भिन्न-भिन्न विषयों के ज्ञान के साथ-साथ विभिन्न कलाओं की शिक्षा भी प्रदान की जाती थी।

स्वातंत्र्योत्तर भारत में अंग्रेज़ों द्वारा विकसित मैकाले की शिक्षा व्यवस्था सतत रहने के कारण

*सहायक आचार्य, शिक्षा विद्यापीठ, वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा रावतभाटा रोड, कोटा 324010
**प्रोफ़ेसर (शिक्षा), डॉ. शकुन्तला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास विश्वविद्यालय, मोहन रोड, लखनऊ 226017

शिक्षा का सरोकार मानवीय मूल्य एवं नैतिकता से दूर होता गया। शिक्षा 'भौतिकवादी' तथा 'बाज़ारवादी' होती गयी। इस शिक्षा मानवीय मूल्यों पर आधारित प्राचीन भारतीय समाज की सामाजिक व्यवस्था पर कुठाराघात किया जिसका परिणाम विभिन्न सामाजिक विकृतियों के रूप में सामने आ रहा है। वर्तमान शिक्षा पद्धति सूचना का भंडार है। वह राष्ट्र के लिए डॉक्टर, इंजीनियर, वकील आदि पैदा करने में सक्षम है। परंतु वह एक बच्चा, जो राष्ट्र का भविष्य होता है, उसमें सामाजिक एवं नैतिक मूल्यों को विकसित करने में सक्षम साबित नहीं हो पा रही है। इसके मुख्य कारण हैं— छात्रों का अपने समाज, अपनी संस्कृति, अपने रीति-रिवाज़ से परिचित न हो पाना, शिक्षा का मूल्य भौतिक सुख-सुविधाओं की उपलब्धि एवं पैसों से जोड़ा जाना, बच्चों में ज्ञान की बजाय परीक्षा में अधिक अंक लाने की अंधी होड़, माता-पिता द्वारा बच्चों की सफलता की अन्य बच्चों से तुलना एवं इस कारण बच्चों में बढ़ता तनाव पढ़ाई और बस्ते का बढ़ता बोझ और बच्चों से छिनता बचपन, धन कमाने के क्रम में कहीं पीछे छूटते रिश्ते एवं टूटते-बिखरते परिवार आदि (लिनेच, 2015)।

शिक्षा की इन्हीं चिंताओं को ध्यान में रखकर शिक्षाविद जैकस डेलर्स की अध्यक्षता में यूनेस्को द्वारा गठित अंतर्राष्ट्रीय आयोग इंटर नेशनल कमीशन ऑन एजुकेशन इन ट्वेंटी फर्स्ट सेंचुरी (International Commission on Education in Twenty First Century) की रिपोर्ट *लर्निंग द ट्रेजर विदिन* (Learning the Treasure Within) शीर्षक से 1996 में प्रकाशित की गयी। डेलर्स के अनुसार 21वीं सदी में शिक्षा के चार आधार स्तंभ होने चाहिए। पहला स्तंभ है— 'ज्ञान के लिए सीखना' (learning to know) जो इस बात पर ज़ोर देता है कि हमें ज्ञान के लिए सीखना चाहिए। दूसरा स्तंभ है—'करने के लिए सीखना' (learning to do) जो इस बात पर ज़ोर देता है कि शिक्षा का उद्देश्य किसी व्यवसाय के लिए व्यक्ति में उपयुक्त कौशल का विकास करना होना चाहिए। तीसरा स्तंभ है—'होने के लिए सीखना' (learning to be) जो शिक्षा का उद्देश्य व्यक्ति की स्वतंत्रता एवं उसके संपूर्ण विकास एवं सामाजिक/सामुदायिक हितों के लिए व्यक्तिगत ज़िम्मेदारियों को समझने पर ज़ोर देता है। डेलर्स द्वारा वर्णित चौथा स्तंभ है— 'साथ रहने के लिए सीखना' (learning to live together) अर्थात् 21वीं सदी में शिक्षा का उद्देश्य दूसरों की समझ विकसित करना भी होना चाहिए ताकि शांतिपूर्ण वातावरण में जीवन व्यतीत किया जा सके। इसके अंतर्गत दूसरों के दृष्टिकोण को समझना, समाज को समझना, समाज के नियम-कायदे और रीति-रिवाज़ आदि को समझना भी शामिल है।

यूनेस्को द्वारा प्रकाशित यह रिपोर्ट एक क्रांतिकारी रिपोर्ट है जिसने संपूर्ण विश्व की शिक्षा व्यवस्था में क्रांतिकारी परिवर्तन कर दिया। यदि इसे देखें तो इसके चार स्तंभों में से दो स्तंभ (होने के लिए सीखना एवं साथ रहने के लिए सीखना) शिक्षा में कलाओं के उपयोग के मज़बूत पैरोकार हैं। अपना अस्तित्व बनाए रखने के लिए जीवन में स्वतंत्रता एवं आनंद का महत्वपूर्ण स्थान है जो विभिन्न कलाओं के माध्यम से सहज प्राप्य हो सकते हैं। अतः शिक्षा के इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु कला शिक्षा एक प्रमुख साधन हो सकती है। इसके साथ ही इसमें अंतर्वैयक्तिक समझ विकसित करना, अन्य व्यक्तियों से प्रभावी संप्रेषण, समाज को समझना, समाज के नियम-कायदे और रीति-रिवाज़ आदि को समझना भी शामिल हैं। इनके लिए विभिन्न

कलाएँ एक सशक्त माध्यम हो सकती हैं। कलाओं का सामान्य उद्देश्य है— संप्रेषण, विभिन्न अंतर्द्वंद्वों का उद्घाटन एवं आनंद की प्राप्ति (लॉयड, 2017)। शिक्षा के इन्हीं उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु संपूर्ण विश्व में कला शिक्षण पर काफ़ी ज़ोर दिया जा रहा है।

कला शब्द की परिभाषा अस्पष्ट एवं व्यापक है जिसे शब्दों में बाँधना संभव नहीं है। इसके साथ ही कलात्मक अभिव्यक्तियों का वर्गीकरण भी उतना ही कठिन कार्य है। कलाओं का सामान्य तात्पर्य विचारों, अनुभवों एवं भावनाओं की संगीत, चित्र, भाषा, मुद्रा, गति एवं भाव-भंगिमाओं के माध्यम से सुनियोजित अभिव्यक्ति है। कलाएँ बच्चे को संवेदी, भावात्मक, बौद्धिक एवं रचनात्मक रूप से समृद्ध करती हैं। इसके साथ ही उसके सर्वांगीण विकास में मदद करती हैं। समाज में उपलब्ध कई स्तरीय वस्तुएँ कई प्रकार की कलाओं से विकसित हुई हैं। यह वस्तुएँ सांस्कृतिक विकास में सहायक एवं समाज कल्याण की भावना के विकास में सहायक हैं। कला शिक्षा छात्रों को संप्रेषण के वैकल्पिक तरीके सीखने में मदद भी करती है। इसके साथ ही यह विभिन्न व्यक्तिगत एवं नवीन विचारों को प्रोत्साहित भी करती है और बच्चे में बहुबुद्धि के विकास में अत्यंत सहायक है। प्राथमिक स्तर पर एक उद्देश्यपूर्ण कला शिक्षा जीवन को उन्नत करने एवं रचनात्मक क्षमता को उत्तेजित करने, विभिन्न कौशलों को बढ़ाने एवं बालक के समायोजन (adjustment) में सहायक होती है (गिब्सन, 2003)।

शिक्षाविदों ने अनुभव को शिक्षा में महत्वपूर्ण बताया है। जब शिक्षक भिन्न-भिन्न अभिव्यक्ति कलाओं को अपनी शिक्षण प्रक्रिया में शामिल कर लेते हैं तब वे शैक्षिक संप्रेषण को और प्रभावी बनाने में सक्षम हो जाते हैं। अभिव्यक्ति कला शिक्षण का तात्पर्य कला, संगीत, नृत्य, ड्रामा, कविता, रचनात्मक लेखन, खेल, रेत चित्र आदि विधाओं के शिक्षण-अधिगम की प्रक्रिया में उपयोग से है ताकि ये शिक्षण प्रक्रियाएँ और प्रभावी हो सकें और बच्चों के सर्वांगीण विकास में मदद कर सकें। विभिन्न कलाओं का चिकित्सकीय प्रयोग एवं विभिन्न मनोविकारों पर उनकी प्रभाविता वर्तमान समय में स्थापित हो चुकी है एवं विभिन्न मनोविकारों पर इनके सकारात्मक प्रभावों से संबंधित अनुसंधान बहुतायत में उपलब्ध हैं (गुस्साक, 2007; प्राट्ट, 2004; और वालर, 2006)। विभिन्न कलाओं के माध्यम से कक्षाओं में शिक्षण का विचार महत्वपूर्ण है। इसे बी.एड. के पाठ्यक्रम के लिए आवश्यक माना जा रहा है ताकि भविष्य में शिक्षक विभिन्न कलाओं का प्रभावी प्रयोग शिक्षण के दौरान कर सकें।

कला शिक्षा से जुड़ा विक्टर लॉन्फेल्ड का सिद्धांत आरंभ से ही उपेक्षा का शिकार रहा है, उस पर पर्याप्त अनुसंधान नहीं किए गए हैं। विक्टर लॉन्फेल्ड के सिद्धांत को प्राथमिक एवं माध्यमिक विद्यालय के शिक्षकों के साथ-साथ अभिभावकों के लिए भी जानना आवश्यक है ताकि वे अपने बच्चे की रचनात्मक अभिव्यक्ति को समझ सकें एवं उसमें कलात्मक विकास की आरंभिक संभावनाओं का पता लगा सकें। साथ ही यह दिव्यांग बच्चों के शिक्षकों एवं अभिभावकों के लिए भी महत्वपूर्ण है, क्योंकि यह दिव्यांग बच्चे की छुपी हुई कलात्मक प्रतिभा की पहचान में अभिभावकों एवं शिक्षकों के लिए मददगार हो सकता है। जीन पियाजे के सिद्धांत के समरूप विक्टर लॉन्फेल्ड (गुडमैन और मैरक्वार्ट, 1978) ने अपने अध्ययन में पाया कि बच्चों में चित्रकला का

विकास विभिन्न चरणों में होता है जिसका विस्तृत विवरण निम्नांकित है।

कलात्मक विकास की अवस्था का विक्टर लॉन्फेल्ड का सिद्धांत

कलात्मक विकास की अवस्थाएँ, शिक्षकों को कला शिक्षा के बारे में विस्तार से जानने और उनके शिक्षण-कौशल को उन्नत बनाने में मदद कर सकती हैं। कला शिक्षा के विकासात्मक परिप्रेक्ष्य का अध्ययन सर्वप्रथम विक्टर लॉन्फेल्ड ने 1947 में प्रकाशित अपनी पुस्तक *क्रिएटिव एंड मेंटल ग्रोथ* में किया था। प्रकाशन के बाद यह पुस्तक कला शिक्षकों के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण बन गयी परंतु कला शिक्षकों तक ही सीमित रह गयी।

अपने अध्ययनों के आधार पर लॉन्फेल्ड ने बताया कि कला का विकास छह स्पष्ट चरणों में होता है जिन्हें बच्चों के द्वारा निर्मित कलाकृतियों के आधार पर समझा एवं स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। लॉन्फेल्ड के अनुसार कलात्मकता विकास की छह अवस्थाएँ निम्नांकित हैं—

- अस्पष्ट लेख या घसीटने की अवस्था (1–3 साल)
- पूर्व-नियोजन अवस्था (3–4 साल)
- नियोजन अवस्था (5–6 साल)
- यथार्थ अरुणोदय की अवस्था (7–9 साल)
- छद्‌म प्राकृतिक अवस्था (10–13 साल)
- निर्णय अवस्था (13–16 साल)

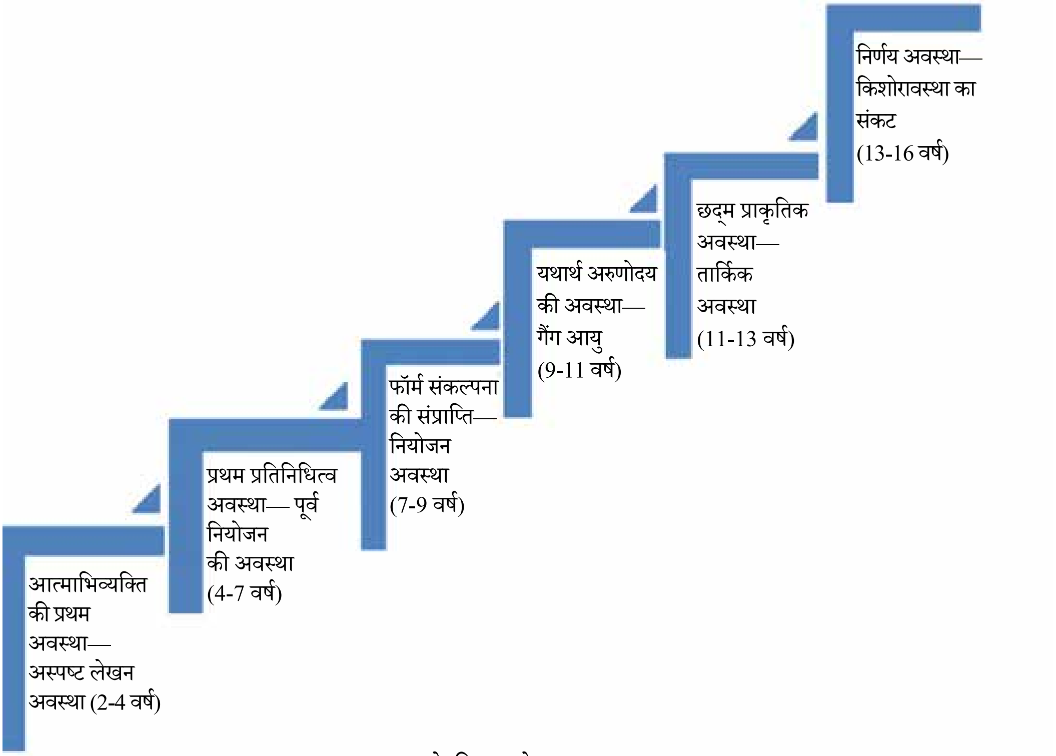

कलात्मकता के विकास के छः चरण

1. अस्पष्ट लेख या घसीटने की अवस्था (1–3 साल)

अस्पष्ट लेखन वस्तुतः एक परिवर्तक कौशल है जिसमें मुख्यतः हाथों एवं अँगुलियों का आँखों के समन्वय के साथ दक्षतापूर्ण योग शामिल है। इस स्तर पर बच्चे चित्रांकन की शारीरिक क्रियाओं में संलग्न होते हैं। इस स्तर पर उनके द्वारा अंकित चिह्नों एवं विभिन्न निरूपणों का न तो कोई अर्थ होता है और न ही उनमें कोई तारतम्यता होती है। यह अवस्था लगभग 3 वर्ष की आयु तक चलती है। इस अवस्था के अंत तक बच्चों का घसीटने/अस्पष्ट लेखन के क्षेत्र में परिमार्जन हो जाता है। आरंभिक दौर में जहाँ उनके अस्पष्ट लेखन पूरे पेज़ और कई बार पेज़ से बाहर भी चले जाते हैं। धीरे-धीरे वह निर्देशित क्षेत्र विशेष पर सीमित होने लगते हैं। यह अवस्था चित्रकला के संदर्भ में सिर्फ़ चित्रांकन एवं आनंद प्राप्ति की अवस्था है। इस अवस्था में चित्रांकन की न तो बच्चे की इच्छा होती है और न उसमें इसकी क्षमता होती है। दूसरे शब्दों में इस अवस्था में बच्चे चित्रांकन के लिए आवश्यक पूर्व कौशल का अभ्यास करते हैं।

2. पूर्व-नियोजन अवस्था (3–4 साल)

कलात्मक विकास के इस चरण में बच्चे अपने द्वारा उकेरी गयी आकृतियों एवं अपने आसपास के भौतिक वातावरण में संबंध स्थापित करने में सक्षम होने लगते हैं। बच्चा विभिन्न गोलों, रेखाओं एवं आकृतियों की व्याख्या, व्यक्ति और आसपास में मौजूद विभिन्न वस्तुओं के रूप में करना शुरू कर देता है। यहाँ अर्थपूर्ण चित्रांकन का आरंभ होता है और इस स्तर पर बच्चा वातावरण एवं अपने चित्रांकन में संबंध स्थापित करने में सक्षम हो जाता है। साथ ही चित्रों के माध्यम से संप्रेषण करना भी सीखना आरंभ कर देता है। हाथ चलाने की शुरुआत करने के बाद वह बाहर की दुनिया के आकारों से संबंध रखने वाले चित्र बनाना शुरू कर देता है। वह कुछ खास तरह के आकारों के द्वारा अपने अनुभवों को प्रकट करता है। ये वस्तु के वास्तविक आकार जैसे नहीं होते बल्कि बच्चे के अपने अनुभव के द्वारा निर्मित, दिखने वाली वस्तुओं के आकार होते हैं। वस्तुतः इस आयु के बच्चे प्रायःही आत्मकेंद्रित होते हैं और उनकी सोच भी आत्मकेंद्रित ही होती है। इस कारण इसमें बच्चा वस्तु को 'जैसा जानता है' या 'जैसा अनुभव करता है', वैसा चित्र बनता है; वस्तु 'जैसी दिखती है', वैसा नहीं। वह अपने मन में चीज़ों के 'प्रतीक' बना लेता है। उदाहरणार्थ, आदमी के चेहरे के लिए एक गोला और उसके अंदर तीन-चार छोटे-छोटे गोले (दो आँखें, एक नाक की लकीर या गोला और एक मुँह)। यह उसका चेहरे का प्रतीक है और इसी तरह हर चीज़ के प्रतीक नए-नए अनुभवों के आधार पर उसके दिमाग में बनते और बदलते रहते हैं। इस अवस्था के चित्र प्रतीक-प्रधान होते हैं, क्योंकि बच्चा अभी तक अंतर्मुखी होता है।

3. नियोजन अवस्था (5–6 साल)

इस अवस्था में बच्चों की चित्रकला में वस्तुओं एवं आकृतियों के बीच के संबंध स्पष्ट हो जाते हैं और वे चित्रों के माध्यम से संप्रेषण करने का प्रयास आरंभ कर देते हैं। प्रायः इस अवस्था तक बच्चे चित्र निर्माण का एक स्कीमा (मानसिक संरचना) विकसित कर लेते हैं। इस स्तर पर बच्चों के चित्रों में एक निर्धारित क्रम देखने को मिलता है। उदाहरण के लिए, इस स्तर पर बच्चों की चित्रकारी में आकाश और धरती का स्पष्ट अंतर देखने को मिलता है। आकाश प्रायः कागज़ पर ऊपर की तरफ़ नीले रंग में चित्रित होता

है वहीं कागज़ के नीचे की तरफ़ हरे रंगों से वस्तुएँ धरती पर रखी चित्रित की जाती हैं। आकाश में तैरती हुई महत्वपूर्ण वस्तुएँ प्रायः बड़े आकार में चित्रित की जाती हैं और गैर-महत्व की वस्तुएँ छोटे आकार में चित्रित की जाती हैं।

4. यथार्थ अरुणोदय की अवस्था (7–9 साल)

चित्र निर्माण के विकास की चौथी अवस्था यथार्थ अरुणोदय की अवस्था है जिसका आरंभ सातवें वर्ष में हो जाता है। इस अवस्था में बच्चे अपने चित्रों के संदर्भ में आलोचनात्मक हो जाते हैं। उन्हें यह स्पष्ट प्रतीत होने लगता है कि विभिन्न वस्तुओं के चित्रों का एक संरचित क्रम काफ़ी नहीं है और उनकी चित्रकारी पहले से अधिक जटिल एवं सूक्ष्म होती जाती है। हालाँकि, इस स्तर पर भी हालाँकि वे स्कीमा का प्रयोग करते हैं पर वह एक पहले की अवस्थाओं जैसी एक सामान्य स्कीमा न होकर एक जटिल स्कीमा होती है। इस अवस्था में उनके चित्रों में अति-आच्छादन (overlapping) प्रायः देखने को मिलने लगता है तथा साथ ही उनके चित्रों में स्थानिक (spatial) संबंध और स्पष्ट हो जाते हैं।

5. छद्म प्राकृतिक अवस्था (10–13 साल)

लॉन्फेल्ड के कलात्मक विकास की पाँचवीं अवस्था छद्म प्राकृतिक अवस्था है, जो 9 साल की आयु में आरंभ होती है। इस अवस्था में मूल्यों एवं प्रकाश का चित्रण उनके चित्रों में दिखाई देने लगता है। इस स्तर पर बच्चे अपने चित्रों के प्रति अत्यंत संवेदनशील एवं विवेचनात्मक हो जाते हैं। कलात्मकता के विकास के इस चरण में बच्चे अपनी सफलता के प्रति सजग हो जाते हैं और चित्रांकन के संदर्भ में सफलता का निर्धारण उनके चित्र में प्राप्त वास्तविकता का स्तर होता है। इस स्तर पर चित्रांकन का अपेक्षित वास्तविकता स्तर प्राप्त न होने पर वे कुंठाग्रस्त होने लगते हैं। इस अवस्था में यह अत्यंत आवश्यक है कि उन्हें उपयुक्त प्रोत्साहन एवं बढ़ावा दिया जाए।

चित्रकला के विकास में इस अवस्था का विशेष महत्व है। इसमें बच्चे की कल्पना-शक्ति का प्राधान्य न रहकर उसकी विवेचनात्मक शक्ति का प्राधान्य रहता है। चाक्षुष अनुभवों का अधिक असर होने के कारण बारीकियों पर नज़र पड़ती है। इसी कारण वह अपने चित्र में भी उन बारीकियों को दिखाना चाहता है। उसकी पूरी दृष्टि ही चाक्षुष-प्रधान हो जाती है। इस अवस्था में बच्चा हर काम को बड़ों की तरह करने की कोशिश करता है। वह कभी यह महसूस नहीं करता कि वह बड़ों जैसा नहीं है। जैसा बड़ों को करते देखता है, वैसा ही वह भी करना चाहता है। कला में भी यही बात लागू होती है। कला में समाज की साधारण रुचि का झुकाव वास्तविकता की तरफ रहा है। कुछ कलाकारों को और विशेषज्ञों को छोड़कर अधिकतर व्यक्ति ऐसी ही तस्वीरें या मूर्ति पसंद करते हैं, जो वास्तविकता-प्रधान हों। घरों में, पुस्तकों में और सब जगह अधिकतर चित्र वास्तविक ही रहते हैं। बच्चे अगर किसी को चित्र बनाते हुए भी देखते हैं तो वे भी अकसर ऐसे ही चित्र बनाने वालों को देखते हैं, जो वास्तविक चित्र बनाते हों।

6. निर्णय अवस्था (13–16 साल)

चित्रकला विकास की आखिरी परंतु महत्वपूर्ण अवस्था निर्णयात्मक अवस्था है जिसमें बच्चे या तो अपनी चित्रकला जारी रखने का निर्णय करते हैं या वे चित्रकला को बिना योग्यता के एक कार्य के रूप में आँकने लगते हैं। इस अवस्था में

स्व-विवेचना एक अंतर्निहित क्रिया होती है। कई किशोर बच्चे यह विश्वास करने लगते हैं कि उनमें चित्रकला के आवश्यक कौशल नहीं हैं या फिर कई किशोर अपने चित्रकला कौशलों को उन्नत करने में लगे रहते हैं। वास्तविकता के बारे में सचेत और संज्ञान होने पर जब वह एक चित्र बनाने जाता है, किंतु चित्र उतना वास्तविक नहीं बनता जितना उसे दिखता है, उसकी आँखें वस्तु में और उसके चित्र में कोई भी फ़र्क नहीं चाहतीं, परंतु ऐसा न होने पर उसे नैराश्य का अनुभव होता है और कला की तरफ से उसका दिल हटने लगता है।

कला-शिक्षकों का मानना है कि कुछ जन्मजात कलाकारों को छोड़कर यह अवस्था हर व्यक्ति के जीवन में आती ही है। उनका कहना है कि यह विकास की एक प्राकृतिक सीढ़ी है। हर एक बच्चे को इस संकट-काल से गुज़रना ही पड़ता है। इस निर्णयात्मक अवस्था में उपयुक्त सहयोग मिलने पर बच्चे अपना चित्रांकन कार्य जारी रखते हैं अन्यथा उससे विमुख हो जाते हैं। इस निर्णयात्मक अवस्था पर बच्चों को उपयुक्त परामर्श दिया जाए और यह बताया जाए कि वे चित्रांकन को कौशल के स्तर की परवाह किए बिना जारी रखें। उन्हें यह भी समझाया जाए कि अभ्यास द्वारा प्रखरता का कोई भी स्तर प्राप्य है तब बच्चों की रुचि आगे भी चित्रकला में बनी रह सकती है अन्यथा वे धीरे-धीरे इससे दूर हो जाते हैं। यदि देखा जाए तो चित्रकला विकास की यह आखिरी अवस्था भविष्य के एक चित्रकार के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण होती है और एक संपूर्ण कलाकार के उद्‌भव की अवस्था है।

निष्कर्ष

बढ़ते मानसिक तनाव और मूल्य क्षरण के युग में कला एवं नाट्य शिक्षा, यदि बच्चों का कला प्रेम जागरूक कर सके तो न केवल इससे बच्चों के मानसिक तनाव को कम करने में मदद मिलेगी बल्कि बच्चों के अंदर नैतिक एवं सामाजिक मूल्यों को स्थापित करने में भी मदद मिलेगी। इस तरह एक उन्नत समाज, एक उन्नत राष्ट्र एवं एक शांतिपूर्ण विश्व की स्थापना कर सकने में सहायक होगी। इस हेतु बी. एड. के पाठ्यक्रम में नाट्य एवं कला शिक्षा को शामिल किया जाना एक स्वागतयोग्य कदम है। परंतु साथ ही कलात्मक विकास की अवस्था का विक्टर लॉनफेल्ड का सिद्धांत भी प्राथमिक एवं माध्यमिक स्तर पर शिक्षक पाठ्यक्रम में आवश्यक रूप से शामिल किया जाना चाहिए, क्योंकि इसी स्तर पर बच्चों में कलात्मकता प्रस्फुटित एवं पल्लवित होती है।

संदर्भ

कुमार, ए. 2016. *ड्रामा एंड आर्ट इन एजुकेशन*. वर्धमान महावीर मुक्त विश्वविद्यालय, कोटा.

गुडमैन, के.जे. और डी.आई. मैरक्वार्ट, 1978. क्रिएटिविटी एवं पर्सेप्शन: दि नैगलेक्टिव थ्योरी ऑफ़ लॉन्फेल्ड. *दि जर्नल ऑफ़ क्रिएटिव बिहेवियर*. https://doi.org/10.1002/j.2162-6057.1978.tb00178.x पर देखा गया।

गुस्साक, डी. 2007. दि क्रिएटिवनैस ऑफ़ आर्ट थैरेपी इन रिड्यूसिंग डिप्रेशन इन प्रीज़न पॉपुलेशन. इंटरनेशलन जर्नल ऑफ़ ओफ़ेंडर थैरेपी एंड कंपैरेटिव क्रिमोनोलॉजी. 51(4). 444–460. https://doi.org/10.1177/0306624X06294137 पर देखा गया।

जुर्मेलैन, एम., वी. लॉन्फेल्ड और डब्ल्यू. एल. ब्रिटेन.1970. क्रिएटिव एंड मेंटल ग्रोथ. *आर्ट एजुकेशन*. https://doi.org/10.2307/3191547 पर देखा गया।

प्राट्ट, आर.आर. 2004. आर्ट, डांस एंड म्यूज़िक थैरेपी. *फिजिकल मैडिसिन रिहैविलिटेशन क्लिनिक्स ऑफ़ नॉर्थ अमेरिका*.15(4). पृष्ठ संख्या 827–841. https://doi.org/10.1016/j.pmr.2004.03.004 देखा गया।

रॉबिन, गिब्सन. 2003. लर्निंग टू बी एन आर्ट एजुकेशन: स्टूडेंट टीचर्स एट्टीड्यूड्स टू आर्ट एंड आर्ट एजुकेशन. *दि इंटरनेशन जर्नल ऑफ़ आर्ट एंड डिज़ाइन एजुकेशन*. 22(1). पृष्ठ संख्या 111–120. https://onlinelibrary.wiley.com/doi/abs/10.1111/1468-5949.00344 पर देखा गया।

लॉयड, के. 2017. *बेनीफ़िट्स ऑफ़ आर्ट एजुकेशन: ए रिव्यू ऑफ़ दि लिटरेचर स्कॉलरशिप एंड इंगेजमेंट इन एजुकेशन*. 1(1). डोमिनिकन विश्वविद्यालय, कैलिफ़ोर्निया. https://scholar.dominican.edu/seed/vol1/iss1/6/?utm_source=scholar.dominican.edu%2Fseed%2Fvol1%2Fiss1%2F6&utm_medium=PDF&utm_campaign=PDFCoverPages से प्राप्त।

लिनेच. डी. 2015.आर्ट थैरेपी विद एडोलेंसट्स. *दि विले हैंडबुक ऑफ़ आर्ट थैरेपी*. पृष्ठ संख्या 252–261. https://doi.org/10.1002/9781118306543.ch25 पर देखा गया।

वालर, जी. 2006. आर्ट थैरेपी फ़ॉर चिल्ड्रन: हाउइट लीड्स टू चेंज. *क्लिनिकल चाइल्ड साइकोलॉजी एंड साइकेट्री*, 1(2). पृष्ठ संख्या 271–282. https://doi.org/10.1177/1359104506061419 पर देखा गया।

हीलमैन, एच. एफ. और वी. लॉन्फेल्ड, 1952. क्रिएटिव एंड मेंटल ग्रोथ. *आर्ट एजुकेशन*. https://doi.org/10.2307/3184263 पर देखा गया।